कर्मकारक

कर्तुरीप्सिततमं कर्म

पाणिनि ने कर्मकारक की इस प्रकार परिभाषा दी है - "किसी वाक्य में प्रयोग किये गये पदार्थों में से जिसको कर्त्ता सबसे अधिक चाहता है उसे कर्म कहते है"।

"जिस वस्तु या पुरुष के ऊपर किया का फल समाप्त होता है, उसे कर्म कहते है"- यह हिन्दी तथा अंगरेजी में कर्मकारक का लक्षण बदलाया जाता है; किन्तु साहित्य में ऐसे अनेक उदाहरण आते हैं जिन पर क्रिया का फल समाप्त तो होता है, किन्तु वे कर्मकारक नहीं माने जाते।

जैसे - वह घर जाता है।

यहाँ यद्यपि 'जाने का कार्य 'घर' पर समाप्त होता है तथापि 'घर' साधारणतः कर्म नहीं माना जाता। संस्कृत में भी 'घर' को साधारण नियमों के अनुसार कर्म नहीं मानते, न 'जाना' को सकर्मक क्रिया मानते हैं।

> कर्त्ता की चाह का अभिप्राय यह है कि यदि कोई पदार्थ कर्मादि को अभीष्टतम हो परन्तु कर्त्ता को उसके प्रति अभीष्ट का भाव न हो तो उसकी कर्म-संज्ञा नहीं होगी।
>
> जैसे 'माषेस्वश्वं वध्नाति' (उड़द के खेत में घोड़े को बाँधता है)
>
> इस वाक्य में बाँधने वाला अपनी बाँधने की क्रिया के द्वारा अश्व ही को वशंगत करना चाहता है। अतएव बन्धनव्यापार द्वारा अश्व ही कर्त्ता को अभीष्ट है, उड़द नहीं। उड़द की चाह अश्व को हो सकती है और उसके प्रलोभन से अश्व का बाँधना सुगमतर भी हो सकता है, परन्तु कर्त्ता को यहाँ उसकी चाह नहीं है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि कर्त्ता की इच्छा का ही प्राधान्य कर्मनिर्धारण में निर्णायक होता है, न कि कर्त्ता से अतिरिक्त अन्य किसी को इच्छा का प्राधान्य।
>
> जिसे कर्म संज्ञा दी जायगी, वह पदार्थ कर्त्ता की क्रिया द्वारा उस (कर्त्ता) को अभीष्टतम होना चाहिए, अर्थात् यदि उसी क्रिया से कई पदार्थ ऐसे सम्बद्ध हों जिन सभी की सामान्य चाह कर्त्ता रखता है तो उन सबों में जो सब से अधिक इप्सित होगा, वही कर्मसंज्ञा को प्राप्त करेगा, दूसरा नहीं। जैसे 'पयसा ओदनं भुंक्ते' (दूध से भात खाता है) इस वाक्य में दूध भी भात ही की तरह कर्त्ता को प्रिय है, पर कर्त्ता अपने भोजनव्यापार द्वारा जिस को सब से

अधिक पाना चाहता है, वह भात है, न कि दूध । क्योंकि दूध पेय है, भोज्य नहीं, यह तो केवल भोजन-क्रिया के सम्पादन में सहायक है।

इसी कारण 'ब्राह्मणस्य पुत्रं पन्थानं पृच्छति' इस वाक्य में यद्यपि पूछने वाला कर्त्ता पुत्र की अपेक्षा विज्ञ ब्राह्मण से ही रास्ता पूछना अधिक पसन्द करेगा, तथापि ब्राह्मण की कर्मसंज्ञा नहीं हो सकती, अतः क्रिया के साथ कोई सम्बन्ध न होकर पुत्र के साथ विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुआ है।

कर्मणि द्वितीया कर्म को बतलाने के लिए द्वितीया विभक्ति का प्रयोग होता है, जैसे भक्त हरि को भजता है। इसमें 'हरि को' कर्म है, इसलिए हरि शब्द में द्वितीया करनी होगी-- भक्तो हरिं भजति । ब्रह्मचारी वेदमधीते।

तथायुक्तं चानीप्सितम्

कुछ पदार्थ ऐसे भी होते हैं जो कि कर्त्ता द्वारा अनीप्सित होत हुए भी ईप्सित की तरह क्रिया से सम्बद्ध रहते हैं। उनकी भी कर्मसंज्ञा होती है ।

जैसे, 'ओदनं भुञ्जानो विषं भुंक्ते' इस वाक्य में कर्त्ता को 'विष' अत्यन्त अनीप्सित है, परन्तु 'ओदन' (जो भोजन क्रिया के द्वारा कर्त्ता का ईप्सिततम है) की ही तरह वह भी उस क्रिया से सटा है और ओदन भोजन के साथ उसके भोजन का भी रहना अनिवार्य है। अतः 'विष' भी कर्मसंज्ञक हो जायगा।

इसी प्रकार 'ग्रामं गच्छन् तृणं स्पृशति'- इस वाक्य में भी 'तृण' कर्मसंज्ञक होगा।